माखनलाल चतुर्वेदी
स्मारक व्याख्यान

(सोमवार 4 अप्रैल 1994)

वक्ता

प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० जयन्त विष्णु नार्लीकर

विषय

विज्ञान, समाज और पत्रकारिता

माखनलाल चतुर्वेदी
राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल

विज्ञान, समाज और पत्रकारिता

देवियों और सज्जनों,

माखनलाल चतुर्वेदी स्मारक व्याख्यान देते समय मैं गौरव का अनुभव कर रहा हूं कि एक विख्यात पत्रकार, देशभक्त और कवि की याद में नियोजित व्याख्यान के लिये मुझे यहां आमंत्रित किया गया । परंतु इसके साथ ही इस सम्मान के लिये मेरी अयोग्यता मुझे अस्वस्थ कर रही है, खासकर उन दिग्गजों की याद से जिन्होंने पिछले वर्षों में यह व्याख्यान दिया था । मेरी भावनाएं व्यक्त करने के लिये मैं महाकवि कालिदास की उन पंक्तियों का सहारा लूंगा, जो उन्होंने रघुवंश के आरंभ में लिखी थीं:-

मन्दः कवि यशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहु रिव वामनः ॥

अथ वा क्रत वाग्द्वारे वंशे ऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः ।
मणौ वज्र समुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ॥

जिस विषय पर बोलने की धृष्टता मैं कर रहा हूं उसके विविध पहलुओं पर पूर्वसूरियों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं, मैं उनका संकलन मात्र करुंगा। इस धृष्टता के लिये मेरा बहाना यही है कि एक वैज्ञानिक होने के नाते आज के व्याख्यान का विषय मुझे काफी चिंतित कर देता है । आशा है मैं आपको अपनी चिन्ता में सहभागी कर सकूं।

संक्षेप में, मैं यह महसूस करता हूं कि आज के माहौल में विज्ञान और समाज के बीच जितना घनिष्ट संबंध होना चाहिये, उतना नहीं है और इस स्थिति में सुधार होने के लिये पत्रकारिता एक प्रभावशाली साधन हो सकती है। यही, एक वाक्य में मेरे आज के व्याख्यान का सारांश है ।

♦ ♦ ♦

समाचारपत्रों की आधुनिक परंपरा दो या तीन शतकों से अधिक पुरानी भले ही न हो, पत्रकारों की परंपरा, मेरे ख्याल से, काफी लंबी है। मैं देवर्षि नारद को आद्य-पत्रकार मानता हूं। "रामचरित मानस" के बालकाण्ड में जब नारद जी हिमालय के यहां जाते हैं, तो पर्वतराज कहते हैं ।

"त्रिकालग्य सर्वग्य तुम्ह गति सर्वत्र तुम्हारि"।

नारदजी त्रिकाल जानते थे और सभी जगह आते-जाते थे। आज के पत्रकार इसी आदर्श को निभाने में प्रयत्नशील रहते हैं। फिर इधर का समाचार उधर सुनाना, अफवाहें फैलाना, एक जगह की गुप्त मंत्रणा को अन्यत्र सुनाना, आगामी संकट के प्रति किसी नरेश को सावधान करना, या एक व्यक्ति को दूसरे के प्रति भडकाना..... । यदि नारद न होते तो हमारी पौराणिक गाथाएं उतनी रोचक न बनतीं। और आज के पत्रकारों को जैसे कुछ अवसरों पर क्रोध का शिकार बनना पडता है, वैसे अनुभव नारदजी को भी आते थे। लेकिन "नारायण-नारायण" कहते हुए किसी कांड से अपनी अलिप्तता जितनी सफाई से वे कर पाते थे, उतनी कामयाबी शायद आज के पत्रकार हासिल नहीं कर पाए हैं।

पत्रकारिता का दूसरा पौराणिक, लेकिन अधिक सीमित उदाहरण मिलता है महाभारत में संजय का। जब धृतराष्ट्र युद्ध का आखों देखा हाल सुनना चाहते थे, तब व्यासजी ने संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की और धृतराष्ट्र से कहा:

चक्षुषा संजयो राजन्दिव्येनेष समन्वित: ।
कथयिष्यति ते युद्धं सर्वज्ञश्च भविष्यति ॥
प्रकाशं वा रहस्यं वा रात्रौ वा यदि वा दिवा ।
मनसा चिंतितमपि सर्वं वेत्स्यति संजय ॥ (भीष्मपर्व: ६. २. १०-११)

याने प्रकट हो या गुप्त, दिन में या रात में, इतना ही नही मन में उभरने वाले विचारों को भी जानने की क्षमता संजय को मिली थी। और संजय युद्ध की भली-बुरी वार्ताएं तो सुनाते ही थे, पर उन पर टिप्पणियां भी करते थे। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि 1991 के खाडी युद्ध में सी एंन एन (CNN) टेलिविजन ने जो करामातें दिखाई वे संजय ने महाभारत-युद्ध में प्रस्तुत कीं थीं।

♦ ♦ ♦

नारद और संजय के उदाहरण मैंने इस हेतु दिये कि वार्ता या समाचार के प्रति मानव पुरातन काल से उत्कंठित रहा है । ये दोनों पात्र तात्कालीन आवश्यकताओं के निदर्शक हैं। आज भी हम समाचारपत्रों को भले ही कोसें, पत्रकारों को बाधा या हस्तक्षेप मानें, तो भी जिस दिन अखबार की छुटटी रहती है, वह दिन कुछ सूना सा लगता है ।

इसीलिये पत्रकारिता आज के जनजीवन का ऐसा महत्वपूर्ण अंग बनी है कि इसका समाज गठन पर काफी प्रभाव पड़ सकता है। क्या मनुष्य की जानकारी की पिपासा और आधुनिक तकनीकी साधनों द्वारा उस प्यास को बुझाना, इस मार्ग से हम समाज को नई दिशाएं दिखा सकते हैं ? पत्रकारिता एक ऐसा माध्यम है, जो समाज के भले और बुरे दोनों काम आता है। बुरे पर अंकुश लगाना और भले को आगे बढ़ाना-क्यों कर संभव हो सकता है ?

इन प्रश्नों पर विचार-मंथन करने से पहले, आइए देखें, समाज पर आज क्या गुजर रही है और उसके प्रकट कठिन मसलों की अप्रकट जडे कहां हैं और कैसी हैं।

♦ ♦ ♦

आज का युग अवसर "विज्ञान युग" इस नाम से संबोधित किया जाता है । इसकी वजह यही है वैज्ञानिक खोजें और उनका तकनीकीकरण यह क्रिया इतनी तेजी से चल रही है कि उनको समझना और अपनाना तो दूर रहा, उनके अस्तित्व मात्र से मानव समाज भौचक्का सा होता जा रहा है। इस सिलिसले में आल्विन टोफ्लर नामक लेखक ने अपनी पुस्तक फ्यूचर शाक (Future Shock) में कुछ मनोरंजक जानकारी पेश की है जिसका जिक्र मै यहां करना चाहूंगा।

मानव समाज का ज्ञात इतिहास कोई 50,000 वर्षों से अधिक नहीं रहा होगा.....यानी जहां तक आज हमें जानकारी उपलब्ध है, आदि मानव का जमाना यही कहीं से अपने अस्तित्व के प्रमाण देता रहा है। टोफ्लर महोदय इस कालखंड को करीब 800 समान भागों में बांटते हैं, ताकि एक भाग, या पर्व साढे साठ साल का होता है।

या हम कह सकते हैं कि एक पर्व सामान्य रुप से एक मानव का जीवन-कालांश के बराबर है। इस प्रकार 50,000 वर्षों का कालखंड 800 मानवी पर्वों के बराबर मानकर हम टोफलर की भूमिका प्रस्तुत करते हैं।

तो जहां तक हमें इतिहास गवाही देता है, इन 800 पर्वों में से 650 पहले पर्व, यानी अस्सी प्रतिशत से अधिक, मानव ने प्राथमिक दशा में गुफाओं, जंगलों में रहकर बिताए। जिस आधार पर हम आज संस्कृति का मूल्यांकन करते हैं वह लेखनकला, जिसके द्वारा मानव एक पर्व से दूसरे पर्व तक अपनी जानकारी पहुंचाता रहा है, उसे केवल पिछले 70 पर्वों में ही ज्ञात थी... यानी दस प्रतिशत से भी कम। और जिसे आज हम दैनिक जीवन का एक साधारण भाग मानते हैं, वह मुद्रण-कला मानव पिछले 6 पर्वों से ही इस्तेमाल करता आया है ।

दैनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग हैं घडियां। मिनट एवं सेकंड जैसे सूक्षम कालखंड मापन करने की क्षमता मानव ने पिछले 4 पर्वों में ही हासिल की। और आज के विविध यंत्रों....बिजली की बत्तियां, पंखे आदि से लेकर क्रेन जैसे महाकाय मशीनों को चलाने वाली इलेक्टिक मोटर का अविष्कार पिछले दो-ढाई पर्वो मात्र का है। और यदि हम अपने दैनिक जीवन की समीक्षा करें तो हमें यह पता चलेगा कि आज इस्तेमाल की जानेवाली अधिकांश वस्तुएं एक पर्व पहले मौजूद नहीं थी।

यह अंतिम वाक्य कितना सारगर्भित है। खेती के लिये आवश्यक ट्रैक्टर, शहरी जीवन में सदा देखे जाने वाले ट्रांजिस्टर, टेलीविजन, रेफ्रिजरेटर जैसे उपकरण, एस टी डी फोन एवं फैक्स जैसे संचार-वार्ता के साधन, सभी जगह अपना प्रभाव दिखाने वाले कंप्यूटर, अंतरिक्ष में चक्कर लगाने वाले यान और मानव निर्मित उपग्रह, आधुनिक युद्ध में इस्तेमाल होने वाले शस्त्रार्थ....जहां भी देखें हमें ऐसी चीजें दिखाई देंगी, जो इन 800 पर्वों में से अंतिम पर्व में ही प्रकट हुई। इतना ही नही, विज्ञान की खोजों के कई तकनीकी अविष्कार अंतिम आधे पर्व में हुए यह वास्तविकता भी भुलाई नहीं जा सकती।

आल्विन टोफ्लर का यह कहना है कि उपयुक्त पर्वक्रम हमें विज्ञान के बढते प्रभाव की याद दिलाता है।यह प्रभाव उसी तरह बढ रहा है जैसे चक्रवद्धि ब्याज लगने से ऋणराशि बढती है या संतति नियमन के अभाव में जनसंख्या बढती है। और इस प्रभाव को समझकर उसको पचाने की क्षमता समाज हमें नहीं है। एक उपमा से यह स्पष्ट हो सकेगा ।

कल्पना कीजिये कि हम किसी दावत में आमंत्रित हैं और मेज पर तरह-तरह के व्यंजन परोसे जा रहे है। किसी एक व्यक्ति के, चाहे वह तगडा पहलवान क्यों न हो, बस के बाहर की बात है कि वह प्रत्येक पदार्थ का एक नमूना खा सके। फिर भी यदि कोई ऐसा प्रयास करता भी है, जब तक वह मेज पर के आधे पदार्थ चख लेता है, कुछ अन्य नये पदार्थ वहां आ जाते हैं, फर वह उन्हें भी चखना चाहेगा।....आखिर एक ऐसी स्थति आ पहुंचेगी कि उसका पेट जवाब दे दे। फिर उसे अपने जिव्हालौल्य के दुष्परिणाम भुगतने पडेगे और साथ ही एक असंतोष भी सताता रहेगा कि मैंने कितने ही नये पदार्थ चखे भी नहीं।

ऐसे अविवेकी भोक्ता को विवेक का पाठ पढाना हो, तो हम उससे कहेंगे,"भाई, सभी चीजें खाना न तो तुम्हारे बस की बात है, न तो वे तुम्हारे स्वास्थ्य के लिये लाभप्रद होंगी। इनमें से इनी-गिनी कुछ चीजें लो—इनसे तुम्हें खाने का मजा भी मिले और तुम्हारी तंदुरुस्ती भी ठीक-ठाक रहे।"

आज की आवश्यकता इसी विवेक को अपनाने की है जिसकी बदौलत समाज विज्ञान और तकनीकी की देनों को, जिनकी संख्या दिनोंदिन बढती जा रही है, सोच समझकर अपनाए। इसी विवेक के अभाव में समाज आज एक किंकर्तव्यविमूढ मनःस्थिति से गुजर रहा है। लेकिन यह विवेक का पाठ समाज को पढाए कौन ?

इस विषय पर काफी विचार मंथन हो रहा है जिसकी कुछ झलकें अब मैं आपके सामने पेश करुंगा ।

♦ ♦ ♦

पिछली शताब्दी के अंत तक वैज्ञानिक अनुसंधान समाज से कुछ अंतर रख, सीमित रूप में प्रयोगशालाओं में हुआ करते थे। आइजक न्यूटन से माइकेल फैराडे तक की विज्ञान परंपरा कुछ धनिकों के आश्रय से या राज्याश्रय से या स्वयं वैज्ञानिक के अपने खर्चे से टिकी रही। क्योंकि इन प्रयोगशालाओं का आर्थिक बोझ सीमित था। लेकिन धीरे-धीरे यह बोझ बढने लगा.....कैसे ? यह एक उदाहरण द्वारा देखें।

1991 में इंग्लैड में रदरफोर्ड ने जब परमाणु विच्छेदन किया तब उसके प्रयोग के उपकरण प्रयोगशाला में ही बनाए गए। उस संपूर्ण सामान को एक व्यक्ति हाथ से उठा सकता था और उनका मूल्य कुछ सैकडो रुपयों में गिना जा सकता था।

फिर उस परमाणु-अनुसंधान की अगली सीढी चढने के लिए वाल्टन और काक्राफट ने जो "लीनियर ऑक्सिलरेटर" बनाया वह एक कमरा व्याप्त किये था और उसका मूल्य पचास हजार रुपयों के आसपास था। फिर एक-दो वर्ष पश्चात लारेंस और लिविंग्स्टन ने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में एक साइक्लोट्रान बनाया जिसका मूल्य था, कोई तीन लाख रुपये, जबकि उन्हें एक महत्वपूर्ण भाग-इलेक्ट्रोमैग्नेट-भेंट में मिला था।

इस यंत्र की बडी एवं सुधारित आवृत्ति 1939 में बनी, कोई दस गुने मूल्य पर। यह इतनी विशाल थी कि इसे चलाने के लिये कई तंत्रज्ञ थे और इससे जुडी एक प्रयोगशाला भी थी। और दूसरे महायुद्ध के उपरांत इससे अठारह गुनी कीमत से एक विशाल साइक्लोट्रान बना, जिसकी अपनी इमारत तो थी ही, पर साथ ही प्रयोगशालाओं का एक संकुल भी उससे जुडा था । यहां बनने वाले शक्तिशाली मूलकणों के आघात से बचने के लिये काफी सावधानियां बरतनी पडी

फिर 1953 में इस साइक्लोट्रान की तुलना में पांच गुनी कीमत चुकाकर एक नया एक्सलरेटर "बेवाट्रान" बना, जिसका व्यास 34 फीट था। एक फैक्टरी के समान इस प्रयोगशाला की अपनी कालोनी थी।

इसके पश्चात "सर्न"(Council Europeen des Recherches Nucleaires) नामसे आज भी विख्यात प्रयोगशाला की रचना हुई 1960 में, जो बेवाट्रान से तिगुने से भी अधिक दाम से बनी। एक रिंग के आकार का यह यंत्र दो सौ मीटर व्यास का है। यह प्रयोगशाला एक राष्ट्र के बजट से कहीं अधिक थी, जिस वजह से इसकी कीमत, यूरोप के कई धनी राष्ट्रों ने मिलकर चुकाई।

यूरोप और अमेरिका में बढती प्रतियोगिता का ही परिणाम था कि "सर्न" के मुकाबले अमेरिका में फर्मीलैब बना जिसकी रिंग सर्न की रिंग से ढाई गुना बडी थी और दाम था,"सर्न" से आठ गुना.....पच्चीस करोड डालर। फर्मीलैब बना 1973 में, लेकिन वैज्ञानिकों के अनुसंधान की बढती सीमाओं ने उन्हें फिर प्रेरित किया कि इससे कहीं बेहतर सुपरकोलाइडर क्यों न बनाएं। अरबों डालर की लागत की यह प्रयोगशाला टेक्ससस राज्य में बननी शुरु हो गई थी, पर बढते बजट को देखते हाल ही में अमरीकन गवर्नमेंट ने इस परियोजना को खारिज कर दिया।

मैंने कुछ विस्तार से मूलकणों के अनुसंधान के लिये आवश्यक और मनु की मछली की तरह बढते और अधिकाधिक कीमती प्रयोगों का जिक्र इसीलिये किया कि बीसवीं सदी में विज्ञान के अनुसंधान की व्यापकता की कुछ झलक मिले। विज्ञान के विविध विषयों में यही हाल देखने को मिलेगा...मानव की जिज्ञासा उसे निरंतर नयी खोजों के लिये प्रेरित करती है, लेकिन दिनोंदिन इस अनुसंधान क्रिया की व्यापकता बढती जाती है।

और फिर प्रश्न उठता है कि इन करोडो, अरबों डालरों का बिल आखिर कौन चुकाता है? अमेरिका जैसे धनी देश में भी, जहां फोर्ड, राकफेलर जैसे प्रतिष्ठान विज्ञान की अनुसंधान-परियोजनाओं को खुले हाथ से सहायता देते हैं, अधिकांश खर्च का दायित्व सरकार ही वहन करती है। इस सिलसिले में कई प्रश्न सामने आते हैं:-

1 यदि सरकार वैज्ञानिक अनुसंधान का अधिकांश व्यय वहन करती है तो उस खर्च का संनियंत्रण(monitoring) कैसे होता है?

2 सरकार जो धन अनुदान करती है वह उसे जनता से टैक्स द्वारा मिलता है। तो क्या इस खर्च के प्रति जनता जागरुक रहती है?

3 वैज्ञानिक अनुसंधान के दो पहलू हैं... शुद्ध और उपयुक्त (pure and Applied), क्या "शुद्ध" अनुसंधान जिसका कोई उपयोग अपेक्षित नहीं है, अनुदान के लायक है?

4 क्या वैज्ञानिक अनुसंधानों से नये खतरे पैदा हो सकते हैं?

5 उपयुक्त अनुसंधान बना बनाया परदेश से खरीदना बेहतर है या, स्वालंबन को ध्यान में रखकर, स्वदेशी अनुसंधान को आगे बढाना?

इस तरह के अनेक प्रश्न सामने आते हैं। इसके अलावा विज्ञान एवं तंत्र विज्ञान के प्रति समाज को जागृत करने के लिये कई पहलुओं पर व्यापक मंच पर चर्चा की आवश्यकता है। अन्यथा, टोफ्लर की चेतावनी के अनुसार समाज और भी भ्रमित अवस्था में रहेगा। आवश्यकता है, जानकारी के आदान-प्रदान की, क्योंकि केवल जानकारी ही इस भ्रमितावस्था से समाज को बाहर खींच यकती है। और यहां एक महत्व का और आवश्यक दायित्व है पत्रकारिता का। यहां"पत्रकारिता" में समाचारपत्रों के अलावा रेडियो,टीवी आदि माध्यम भी हैं।

पत्रकारिता विज्ञान और समाज के बीच की दूरी को निश्चय ही घटा सकती है। जन सामान्य में विज्ञान के प्रति कुतूहल, जिज्ञासा, डर, अनास्था और तटस्थता, सभी प्रकार की प्रवृत्तियों का मिश्रण पाया जाता है। पत्रकारिता का उददेश्य यह रहना चाहिये कि पाठक या श्रोता को तटस्थता से हिलाएं, जिन कारणों से उसके दिल में डर या अनास्था है, उन्हें दूर करने का प्रयास करें और उसके कुतूहल और जिज्ञासा का लाभ उठाकर उसे विज्ञानाभिमुख करें।

आज के माहौल में ऐसे कई प्रश्न हैं, जिनकी चर्चा व्यापक रुप से होनी आवश्यक है। अंग्रेजी कहावत है:knowledge is power: संस्कतय में हम कहते है"वादे वादे जायते तत्वबोध:"। आज के प्रभावशाली संचार माध्यमों का प्रयोग जानकारी बढाने के लिये होना चाहिये, लेकिन ऐसे मार्ग से जिसमें चर्चा, वादविवाद को स्थान मिले।

प्रश्न बहुत हैं, जो इस माध्यम से चर्च के लिये सामने आएं। मैं कुछ इने-गिने प्रश्नों का जिक्र अब करुंगा। जैसा कि मैंने अभी बताया, मैं पत्रकारिता को व्यापक दष्टि से देखता हूं जिसमें समाचारपत्रों के अलावा मैगझीन,

पुस्तकें भी शामिल है, और रेडियो,टीवी, वीडिओ आदि भी हैं तथा व्याख्यानों, प्रश्नोत्तरों द्वारा जनसम्पर्क का भी समावेश है।

♦ ♦ ♦

मेरे विचार से सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है वैज्ञानिक दृष्टिकोण का। वैज्ञानिक दृष्टिकोण विज्ञान से कहीं अधिक व्यापक है। विज्ञान का विकास जिस आलोचनात्मक कार्यप्रणाली से होता है, उसका प्रयोग हमें दैनिक जीवन में भी उपयोगी सिद्ध होगा। और यहां हमें अपने अंधविश्वासों को त्यागकर तर्कसंगत पद्धति अपनानी होगी।

यह दुर्भाग्य की बात है कि धर्म का नाता चमत्कारों तथा अंधविश्वासों से जोडा जाता है। इसलिये जब तथाकथित चमत्कारों की वैज्ञानिक जांच के प्रयास किये जाते हैं या किसी अंधविश्वास की आलोचना की जाती है, तब इसे धर्मविरोधी कृत्य कहा जाता है। चाहे आप किसी धर्म में विश्वास करें या न करें, किसी भी धर्म की सीख मानवता पर जोर देती है..... उनका चमत्कारों या अंधविश्वासों से कोई ताल्लुक नहीं।

यूरोप, अमेरिका में 1970-80 के दशक में यूरी गेलर के चमत्कारों का बोलबाला था। अपने तथाकथित मानसिक प्रभाव से गेलर चमच झुका सकता था। आखिर जेम्स रैण्डी नामक एक पेशेवर जादूगर ने केवल हाथ की चालाकी द्वारा गेलर के सभी "चमत्कार" कर दिखाए। इस भंडाफोड में पत्रकारिता का योगदान रहा है।

पिछले कई वर्षों से "skeptical Inquirer" नामक एक पत्रिका अमेरिका से निकलती है, जिसमें चमत्कार, अंधविश्वास, फलितज्योतिष आदि की वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जांच, आलोचना की जाती है। यह रही परदेश की बात। क्या हमारे देश में ऐसा प्रयास नहीं किया जा सकता?

♦ ♦ ♦

विज्ञान के क्षेत्र में भी कपटकांड होते हैं। दूसरे वैज्ञानिक का अनुसंधान चुराकर प्रकाशित करना, या मनगढंत नतीजे सच बताकर छापना आदि घटनाएं भारत में नहीं विदेश में भी हुआ करती हैं। इनकी जानकारी समाज के सामने पेश करना भी पत्रकारिता के लिये एक रोचक विषय हो सकता है।

1903 की घटना है जब फ्रांस के एक मशहूर वैज्ञानिक ब्लांडलो ने ऐलान किया कि उन्होंने N किरणों का अविष्कार किया है, जर्मनी के वैज्ञानिक रुंटजेन ने X- किरणें खोजी थी, उनके मुकाबले पडोसी राष्ट्र फ्रांस को अपनी इस खोज पर गर्व था। ब्लांडलो को अनेक सम्मान, पुरस्कार मिले। लेकिन धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगा था कि जो N- किरणों के सबूत ब्लांडलो को मिल रहे थे, वे इंग्लैण्ड और जर्मनी के वैज्ञानिक अपनी प्रयागशालाओं में हासिल नहीं कर पा रहे थे।

आखिर उन्होंने वुड नामक अमेरिकन वैज्ञानिक से प्रार्थना की कि वे स्वयं जाकर ब्लांडलो के प्रयोगो की जांच करें। वुड महाशय वहां गये और उन्होंने यह नतीजा निकाला कि N-किरणे वास्तव में हैं ही नहीं। वुड का वर्णन वैज्ञानिक पत्रकारिता का एक अच्छा उदाहरण है।

आजकल वैज्ञानिक अनुदानों की बढती संख्या के कारण कुछ इने गिने वैज्ञानिक इस मोह के शिकार हो जाते हैं कि अपनी महत्ता बढाने के लिए झूठे मनगढंत नतीजे अपने नाम पर जाहिर करें। पत्रकारों का यह दायित्व है कि ऐसी घटनाओं की जांच कर उन्हें प्रकाशित करें।

◆ ◆ ◆

भारत में कई एजेंसिया विज्ञान और तंत्रविज्ञान की परियोजनाओं के लिए अनुदान देती हैं। डिपार्टमेन्ट आफ साइंस एण्ड टैक्नालाजी, डिपार्टमेंट आफ अटामिक एनर्जी, कांउसिल आफ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च, डिफेंस एंड डेवलपमेंट आर्गनाइजेशन, यूनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन, डिपार्टमेंट आफ स्पेस आदि के द्वारा कई संस्थान भी चलाए जाते हैं।

यहां किन विषयों पर अनुसंधान चल रहे हैं? उनसे क्या नतीजे निकले हैं? उनका प्रयोग कहां हुआ है या हो रहा है? आदि प्रश्नों के उत्तर इन संस्थानों की वार्षिक रिपोंटों में भले ही मिलें, लेकिन वे जनता तक नहीं पहुंच पाते। यह एक गहरी खाई है, जिस पर पत्रकारिता ही एक पुल बांध सकेगी।

इन विभिन्न संस्थानों और विश्वविद्यालयों में कार्यरत वैज्ञानिकों के इंटरव्यू लेकर उनके कामों की जानकारी जनता जनार्दन के सामने रखना स्थानीय पत्रकारों को असंभव नहीं। कभी-कभी वैज्ञानिक ही किसी महत्वपूर्ण खोज की जानकारी प्रेस को देते हैं। हमारी राष्ट्रीय या राज्य स्तरीय विज्ञान अकादमियां भी अपने कार्यक्रमों को अधिक प्रकाश में लाना चाहती हैं, और इसमें पत्रकार हाथ बंटा सकते हैं।

भारत में अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर कार्यशालाएं, विचारगोष्ठियां आदि हुआ करती हैं, जिसमें दिग्गज वैज्ञानिक भी कभी-कभी भाग लेते हैं। इनके भाषण, इंटरव्यू आद रेडियों, टी0वी0 या समाचारपत्रों में प्रकाशित करके हम इन वैज्ञानिक घटनाओं की जानकारी जनता को दे सकते हौ।

◆ ◆ ◆

शुद्ध अनुसंधान और उपयुक्त अनुसंधान में से किसकों, या दोनों को किस स्तर पर बढावा देना चाहिए? क्या एक विकासशील देश शुद्ध अनुसंधान पर धनराशि खर्च कर सकता है? क्या दिए गए अनुदानों का सदुपयोग हो रहा है? आदि जो प्रश्न मैंने पहले प्रस्तुत किए थे उन पर वैज्ञानिकों, सरकारी नीति निर्धारकों और कुछ हद तक आम जनता के मतों की चर्चा पत्रकारिता के माध्यम से होनी चाहिए।

विज्ञान विशेषांकों में या रेडियो व टी.वी. पर खास चर्चा सत्र आयोजित करके इन प्रश्नों पर विचार मंथन किया जा सकता है। आखिर विज्ञान एक विशाल शक्ति है जो समाज के भविष्य की दिशा निश्चित कर सकती है। इस शक्ति को सामने लाना समाचार माध्यमों का कर्तव्य है।

ऐसी चर्चाओं में समाज को अधिक निकट महसूस होने वाले प्रश्न भी होने चाहिए। जैसे तंत्रविज्ञान के पीछे-पीछे आने वाला प्रदूषण, इसका क्यों कर मुकाबला किया जा सकता है? अणुभटटियों के इंधन के क्या खतरे हैं और उन पर किस प्रकार अमल किया जा रहा है? जैविक तंत्र विज्ञान में जो प्रयोग हो रहे हैं उनके दूरगामी परिणाम क्या होंगे? अंतरिक्ष में कृत्रिम उपग्रह भेजकर हमें क्या फायदे नसीब होते है?

कुछ पत्रकार अच्छे वक्ता भी होते हैं और उनसे यह आशा की जाती है कि वे ऐसे ज्वलंत प्रश्नों पर अभ्यासपूर्ण भाषण दें। हो सकता है उनके भाषण विवादास्पद हों। तो भी यदि वे जनता एवं सरकार का ध्यान इन विषयों की ओर आकर्षित कर पाएं तो यह उनकी एक बडी देन होगी।

♦ ♦ ♦

विज्ञान एवं तंत्र विज्ञान में प्रतिदिन कोई न कोई नई खोज की घोषणा होती रहती है। कोई वेधशाला किसी ब्रम्हाण्डीय घटना के निरीक्षण की घोषणा करती है, जैसे नये धूमकेतु का आगमन या अतिदूर स्थित बवेजार की खोज, या किसी आकाशगंगा में कृष्ण विवर का आभास। या किसी जैविकी प्रयोगशाला से किसी नये जीन-जिसका किसी दुर्दम्य रोग से नाता है-मिलने या पहचान होने की वार्ता मिलती है। कहीं दूरसंचार में अधिक कार्यक्षम प्रणाली खोजी या बनाई जाती है। या सौर ऊर्जा का इस्तेमाल करने का नया तरीका घोषित होता है। फिर सर्वदा गतिमान कंप्यूटर क्षेत्र में नये अविष्कार होते हैं।

विज्ञान-तंत्र विज्ञान की दिन दूनी रात चौगुनी बढत की जानकारी समाज को देना और उस खास अविष्कार या अन्वेषण के भविष्य में संभव परिणामों की चर्चा करना वार्ता माध्यमों का कर्तव्य है। केवल "युद्धस्य कथा रम्या" या "नपनीतिरेकरुपा:" इस न्याय से लडाइयां और राजनीति के समाचारों तक ही समाज की जानकारी सीमित नहीं रहनी चाहिए, बल्कि जिनका समाज पर दूरगामी या शीघ्रगामी असर होने वाला है, ऐसी वैज्ञानिक-तंत्र वैज्ञानिक घटनाओं में भी समाज की स्वाभाविक रुचिएवं जिज्ञासा का फायदा पत्रकारिता को उठाना चाहिए।

भविष्य में वैज्ञानिक खोज के क्या परिणाम होंगे यह कहना सहज काम नहीं है। ऐसी कुछ भविष्यवाणियां जो प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने की थीं और जो गलत साबित हुई उनके कुछ उदाहरण देखें :-

1. साइमन न्यूकंब1835-1909 जैसे वैज्ञानिक ने कहा था कि मनुष्य यंत्रों की सहयता से उड सकेगा और दूर अंतर तय कर सकेगा। यह एक असंभव बात है जो अब पूरी तरह सिद्ध हो चुकी है।

2. थामस एडिसन जैसे तंत्र विशारद ने 1889 में आल्टर्नेटिंग करंट ए.सी. के व्यावहारिक प्रयोग पर गहरी चिंता व्यक्त की थी और कहा था कि यह एक अतीव खतरनाक माध्यम है, जिसका उपयोग आम जनता के लिए नहीं किया जाना चाहिए।

3. एडमिरल विलियम लीही ने 1945 में अमेरिका के अध्यक्ष ट्रूमन से कहा था कि विस्फोटकों के विशेषज्ञ होने के नाते उनका यह दावा था कि परमाणु बम बनाना हमारी सबसे बडी मूर्खता थी, क्योंकि यह बम विस्फोट ही नहीं करेगा।

ऐसी अनेक भविष्यवाणियां गलत साबित हुई, फिर भी हमें भविष्य की ओर दृष्टक्षेप करने का प्रयास करना ही चाहिए। गलत सिद्ध होने के डर से प्रयास ही न करना अनुचित है। बल्कि ऐसे प्रयास काफी हद तक सफल भी हुआ करते हैं और मार्गदर्शन, चेतावनी आदि माध्यमों से समाज के लिए कल्याणकारी भी सिद्ध होते हैं। परमाणु युद्ध कितना घातक होगा इसकी पूर्वकल्पना ऐसे युद्ध टालने में आज तक कामयाब सिद्ध हुई है। वायुमंडल में आजोन वायु के विनाश के भावी खतरे को देखते हुए मानव ने कुछ सावधानियां बरतनी शुरु की हैं। पर्यावरण प्रदूषण के दूरगामी परिणामों की चर्चा समाज के लिए निश्चय ही कल्याणकारी है।

♦ ♦ ♦

कुछ महीनों पहले महाराष्ट्र में भीषण भूचाल आया। इतने बडे संकट की वार्ता संसार के कोने-कोने तक शीघ्र पहुंचाने में संचार माध्यमों ने हाथ बटाया। परिणाम स्वरुप सहायता भी शीघ्र पहुंच सकी। लेकिन जनमानस में आकुलता थी। कहां-कहां के क्षेत्र भूचाल से आगे कभी पीडित होंगे? क्या इनकी कुछ पूर्व चेतावनी मिल सकती है? क्या बांधों की वजह से भूचाल अधिक आते है? इन प्रश्नों के उत्तर विशेषज्ञों ने दिए। कुछ समाचारपत्रों में आये रेडियो-टी.वी. पर चर्चित हुए। यह विज्ञान-पत्रकारिता का ही उदाहरण है।

भीषण संकट, चाहे वे प्राकृतिक हों या मानव निर्मिति जैसे चर्नोबिल कांड या यहां भोपाल की गैस दुर्घटना.....विज्ञान पत्रकारिता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह कहां, क्यों कैसे, आदि प्रश्नों पर जोर दे। कभी-कभी वास्तविकता छिपाई जाती है, जो परदे से आगे आनी चाहिए। विज्ञान की अपूर्ण जानकारी से कुछ दुर्घटनाएं होती है। कुछ में पूर्व व पूर्ण जानकारी के बावजूद आवश्यक सावधानियां नहीं बरती गई, जिस वजह से दुघटना घटी। फिर दुघटना के पश्चात क्या हम कुछ सीख पाएं? या फिर पहले की तरह निष्क्रिय ही बने रहे?

विज्ञान एवं तंत्र-विज्ञान अपनाते समय उसके फायदे तो नजर आते हैं, पर खतरे नजर अंदाज किये जाने की संभावना होती है। पत्रकारिता ऐसे अवसरों पर समाज को सावधान कर सकती है। यह समाज के लिए पत्रकारिता की एक महत्व की देना साबित हो सकती है।

♦ ♦ ♦

इस पार्श्वभूमि में मैं अब इस विषय की संक्षेप चर्चा करुंगा कि विज्ञान-पत्रकारिता का माहौल कैसा है, देश में और विदेश में। चूंकि पश्चिमी देशों में विज्ञान-तंत्र विज्ञान भली तरह फला फूला माना जाता है, इसलिए पहले वहीं का हाल देखें।

अपनी पुस्तक "The wisdom of Science" में रेडियो खगोलशास्त्री हॅनबरी ब्राउन कहते हैं:-

"Although advances in science and technology has given us an unparalleled ability to communicate with one another by radio, television and vast quantities of print, that so-called"media" are seldom used to tell us about science....."

याने, विज्ञान एवं तकनीकी से युक्त संचार माध्यम हमें विज्ञान के बारे में बहुत ही कम जानकारी देते हैं। आगे चलकर ब्राउन महोदय की शिकायत है:-

"As far as journalism is concerned, it would prefer science to go away. Of the 1750 daily papers published in the USA, only 50 employ full-time science writers. The reason is, of course, that the popular media prefer topics that are more sensational and entertaining, and so they avoid science, they do this not only because they think science will bore their customers stiff, but also because it is difficult to find people who can put it over to the public successfully."

संक्षेप में, दैनिक अखबारों में विज्ञान की अपेक्षा सनसनी एवं मनोरंजन का पलडा भारी रहता है। इसके अलावा एक धारणा यह है कि विज्ञान के नाम से ही साधारण आदमी घबराता है। उसे यह विश्वास रहता है कि विज्ञान उसकी समझ के परे है, और इसके पठन-पाठन से केवल उकताना हाथ आयेगा। विज्ञान को रोचक ढंग से लिखने वालों की भी कमी महसूस होती है।

जब विज्ञान में उन्नत देशों का यह हाल है तो फिर भारत का क्या कहना? नेशनल कांउसिल फार साइंस एंड टैक्नॉलॉजी कम्युनिकेशन (NCSTC) के तत्वावधान में ऊर्जा और पर्यावरण ग्रुप द्वारा जुलाई से दिसम्बर 1989 अर्धवर्ग काल में भारतीय अखबारों में छपी विज्ञान विषयक खबरों का सर्वेक्षण हुआ। इस सर्वेक्षण में पता चला कि इन समाचारपत्रों में छपाई की जगह से विज्ञापनों का भाग घटाने पर जो बचता है उस क्षेत्रफल का 2.1 से 6.56 प्रतिशत मात्र विज्ञान सम्बन्धी समाचारों का मिलता है।

अब आप ही सोचिये- जिस विज्ञान एवं तंत्र विज्ञान ने हमारा जीवन आज अपने नियंत्रण में रखा है क्या उसके हिस्से इतना अल्पांश, दिलचस्पी का, उचित है? या तो इससे यह साबित होता है कि हमें यानी आम जनता को विज्ञान में दिलचस्पी नहीं है और वह विज्ञान एवं तंत्र विज्ञान के भविष्य के प्रति लापरवाह है—या हमारे समाचार माध्यम इस दिशा में हमारी दिलचस्पी को, जिज्ञासा को संतुष्ट करने का कष्ट नहीं उठाना चाहते।

मेरे विचार में दूसरा विकल्प वास्तविकता के अधिक निकट है। इस निष्कर्ष के दो कारण हैं। पहला उपर्युक्त सर्वेक्षण पर ही आधारित है। विज्ञान-संबंधी समाचारों में काफी समाचार परदेशी वृत्त संस्थानों के हैं या अखबारो से लिये जाते हैं। न्यूयार्क टाइम्स, हेरल्ड ट्रिब्यून, लंदन टाइम्स या पेरिस के ल मॉन्द से निकले समाचारों को बिना किसी टिप्पणी या परिष्कार के छाप दिया जाता है।

दूसरा कारण मेरे अपने अनुभव पर आधारित है। मुझे ऐसे काफी मौके आते हैं जब मेरे भाषण आम नागरिकों के लिए आयोजित किए जाते हैं। ऐसे भाषणों में उपस्थिति बडी संख्या में रहती है, व्याख्यानोपरान्त प्रश्न भी काफी और अच्छे खासे पूछे जाते हैं। इस अनुभव से मैं इतना तो अवश्य कहूंगा कि जनमानस में विज्ञान के प्रति जिज्ञासा और रुचि काफी है।

♦ ♦ ♦

अपने अखबारों में अपने ही समाचार स्त्रोत से विज्ञान की खबरें देने के लिए NCSTC ने स्त्रोत नामक नियमित प्रकाशन शुरु किया। "स्त्रोत" में विज्ञान विषयक घटनाओं, खोजों, वक्तव्यों आदि के बने-बनाए उद्धरण होते हैं जिन्हें कोई भी समाचारपत्र बिना परिष्कार किये छाप सकता है। इस मार्ग से संपादकों की एक कठिनाई तो दूर हुई कि समाचार लाएं कहां से? लिखे कैसे? और कब? यद्यपि स्त्रोत का यह प्रयोग कुछ हद तक सफल हुआ है, तो भी इसके प्रति जन जागरण की बजाय संपादक जागरण की आवश्यकता है।

एक और अनुभव NCSTC के प्रयोगों का यह है कि उत्तर भारत के तथाकथित हिंदी क्षेत्र में प्रकाशित हिंदी समाचारपत्रों की विज्ञान समाचारों में दिलचस्पी अंग्रेजी पत्रों से कहीं अधिक है। कारण यह भी हो सकता है कि विज्ञान समझना-समझाना मातृभाषा में जितना सहज है, उतना शायद अंग्रेजी जैसी परभाषा में नहीं। स्वयं वैज्ञानिकों के शिरोमणि अल्बर्ट आइन्स्टाइन भी विज्ञान विषयक चर्चा में जब अधिक रंग जाते तो अंग्रेजी छोडकर अपनी मातृभाषा जर्मन में बोलने लगते। "स्त्रोत" का फायदा उठाने वाले अखबारों में भी अधिकांश हिंदी क्षेत्र से हैं।

कुछ अखबार अब हफ्ते में एक बार या महीने में एक बार विज्ञान विशेषांक प्रकाशित करने लगे हैं, यह एक उत्साह की बात है। ऐसे विशेषांकों में लिखने वाले लेखकों की संख्या बढ रही है। ऐसे लेखकों के लिए कार्यशालाएं आयोजित होनी चाहिए, जहां उन्हें आकर्षक शैली में लिखने का अभ्यास हो सके। यह आनंद की बात है कि माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय भी इस सत्कार्य में हाथ बटा रहा है।

लेकिन विज्ञान लेखन या विज्ञान प्रस्तुतिकरण यह ऐसा क्षेत्र है, जिसमें प्रतिष्ठित वैज्ञानिक भी हाथ बंटा सकते हैं। अक्सर यह कहा जाता है कि जो व्यक्ति विज्ञान-शोध में सदा व्यस्त रहता है, उसे ऐसी बातों के लिए

समय कहां? इस संदर्भ में हमारे पुराणों में एक रोचक आख्यान है। कहा जाता है कि शेष नाग पर स्थित विष्णु और लक्ष्मी दोनों पुराण ग्रंथ भागवत कथा सुनाते थे। तो विष्णु भगवान को भागवताख्यान में जितना समय लगता था, उसका चौगुना समय लक्ष्मीजी लेती थीं। इसका कारण? उत्तर इस श्लोक में है:-

अधिकारे स्थितों विष्णुः लक्ष्मी निश्चिंत मानसा।
तेन भागवताख्यानं तस्या भूरि प्रकाशते ॥

विष्णु भगवान को सृष्टि की चिंता निभानी होती है, इसलिए वे झटपट भागवत सुना देते हैं। लक्ष्मीजी निश्चिंत होने के कारण रस लेकर आख्यान सुनाती हैं, जो सुनने में अधिक भाता है।

हमारे वैज्ञानिकों को "अधिकार" से कुछ समय छुट्टी लेकर जनता जनार्दन को विज्ञान गाथा सुनाने के लिए आगे बढना चाहिए। जिस सरकारी अनुदान पर उनका अनुसंधान निर्भर करता है, वह आखिर आम जनता की जेब से ही आया है और इसलिए उनका जनता के प्रति भी कुछ दायित्व होता है।

दायित्व के अलावा, जैसा गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरित मानस के प्रारंभ में लिखा:-

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषानिबंध मति मंजुल मातनोति ॥

इस लोकशिक्षा के कार्य में हाथ बंटाने में स्वयं को भी कुछ कृतार्थता का अनुभव होता है जैसा मैं स्वानुभव से कह सकता हूं। अति मंजुल भाषा में लिखा रामचरित मानस लोकशिक्षा का एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हुआ और आज भी है। उसी तरह लोकभाषा में विज्ञान गाथा सुनाना समाज शिक्षा का एक अनूठा पर आवश्यक तरीका है।

♦ ♦ ♦

लुई ले रॉय ने अपने Vicissitude (स्थित्यंतर) नामक पुस्तक में लिखा है:

"दीर्घकाल के उपरांत आज हमें संसार में इतने बडे पैमाने पर द्वेष, पावित्र्यहीनता और असत्य फैले दिखाई देते हैं। भक्तिभाव का तो लोप हो गया है, जीवन में सादगी तथा सीधेपन का उपहास हो रहा है और न्याय तो खाली नाममात्र के लिए बचा है। जहां देखें, वहां अंधेर तथा किंकर्तव्यविमूढता दिखाई देते हैं _योजना के अनुसार कुछ भी नहीं हो रहा है।"

आप कहेंगे कि यह वर्तमान का अच्छा चित्रण है। लेकिन ले रॉय ने यह पुस्तक लिखी थी सन 1575 में, चार शताब्दियों पहले। उसने ऐसी टिप्पणी क्यों की? इस वजह से कि वह विज्ञान का ऊषाकाल था। तकनीकी साधनों की कुछ झलकें समाज को मिल रही थीं। तत्कालीन यूरोप में लोह चुंबक की बदौलत दूर-दूर तक नौकायन संभव हो गया था और संसार के अन्य कोनों से संपर्क स्थापित होने लगा था। इसलिए नयी विचारधाराएं पुरानी प्रस्थापित विचारधाराओं से टक्कर ले रहीं थीं। दूर के नये ससंर्ग रोग निकट आ गये थे। विस्फोटकों की खोज से युद्धकला में नयी विध्वंसक्षमता आ रही थी। सच्ची हालत में यह एक स्थित्यंतर ही था।

कुछ ऐसी ही दशा आज मानव समाज में है। संचार माध्यमों की कार्यक्षमता ने वैचारिक संघर्ष बढाया है। लोकसंचार की सुलभता ने एडस जैसे रोगों को शीघ्र फैला दिया। विस्फटकों की विध्वंसक्षमता के बारे में तो क्या कहना? युद्धों की संहारकता तो कल्पनातीत बढी है। प्राकृतिक दुर्घटनाओं के साथ तकनीकी दुघटनाएं भी होवे

दिखाती हैं। यांत्रिक जमाने में मनुष्य के सामने समय बिताने की समस्या आ खडी है, जिसके दुष्परिणाम बढती गुनाहगारी, मादक पदार्थों का सेवन, बेरोजगारी समस्या आदि के रुप में हम देखते है।

ऐसे चित्र को देखकर कुछ लोग विज्ञान विमुख हो जाते है। "काश यदि विज्ञान न होता, तकनीकी अविष्कार न होते तो कितना अच्छा होता..... दो शताब्दियों पहले का शांत सादा जीवन आज से कहीं बेहतर था" ऐसे विचार भी सुनने को मिलते है। पर यह एकतरफा चित्र है, जिसमें कुछ हद तक "दूरस्था पर्वता रम्या:" की भावना शामिल है। दो शताब्दियों पहले का जीवन सादा भले ही हो, उस समय भी समस्याएं थीं जैसे, बालमृत्यु, शीघ फैलने वाले संसर्गजन्य रोग, अकाल आदि। विज्ञान ने रोगों पर काफी हद तक विजय पाई है, जीवन स्तर ऊंचा किया है, आयु बढाई..... इत्यादि गुण भी विज्ञान में हैं।

अंत में हमें वैज्ञानिक वरदान अपनाने हैं, पर शापों के खतरों को दूर रख कर। यूरोप में ले रॉय चर्चित स्थित्यंतर के बाद नव निर्माण का युग आया था, जब समाज में नया चैतन्य आया। यही बात अब हमें अगली सदी में साकार कर दिखानी है। इसलिए नीर क्षीर विवेक अपनाकर हमें काफी सावधानी बरतकर विज्ञान-तंत्र विज्ञान का इस्तेमाल करना है।

इस जन जागृति में विज्ञान पत्रकारिता को हाथ बँटाना है क्योंकि यह समाज और विज्ञान को जोडने वाला एक सेतु है। आज यह पुल रस्सी का बना है जो थोडे से धक्के से दोलायमान हो जाता है..... आज इस पर थोडा ही संचार चालू है। इसे एक पक्के क्रांकीट के महासेतु में बदलना है जिस परबडे पैमाने पर यातायात हो सके। तब हम विज्ञान का समझ बूझ कर प्रयोग करके समाज में फिर एक नवनिर्माण की क्रिया चालू कर सकेंगे।

इस आशावाद के साथ और इस शुभकामना के साथ कि इस जन जागृति की क्रिया में यह पत्रकारिता विश्वविद्यालय पूरी शक्ति से हाथ बटाएगा, मैं अपना व्याख्यान समाप्त करता हूं।

धन्यवाद।

4 अप्रैल, 1994
माखनलाल चतुर्वेदी स्मृति व्याख्यान
भोपाल

— जयंत नार्लीकर
अंतर-विश्वविद्यालय क्रेंद्र
खगोल विज्ञान और खगोल भौतिकी, पुणे